THE TIMES OF INDIA

Date: 27-11-26

# Don't Get Trumped

***India shouldn't sign deal with US under tariff threat. Trump's word isn't worth the ink on the dotted line***

**TOI Editorials**



America has a new tariff threat for 14 countries, India included. These tariffs won't apply until Feb at least, so what should we do: appeal, appease or ignore? Data says we can ignore them. India faced high US tariffs through much of 2025, yet exports increased, and even our trade surplus with US rose from $45bn in 2024 to $57bn in 2025. We are doing fine, we needn't lose sleep over a new 25% tariff threat.

US, however, would like us to sign the long-delayed trade deal, and settle for 17% tariff instead. Note that it's offered us a 1-point concession as a sweetener over competitors like Bangladesh, Cambodia, Indonesia, Malaysia and Thailand, who would be tariffed at 18% after signing a deal. This relative advantage is a not-so-subtle bait, but how will it affect Indian exports? A large part is made up of pharma and phones made in India. These are exempt from tariffs. Aluminium and steel exports to US attract 50% duty, and signing a trade deal won't change anything. That leaves an 8-point tariff question hanging over roughly half of our exports, mostly labour-intensive products.

Would US buyers change suppliers due to slightly higher tariff costs? Not until Feb, by when, as TOI reported yesterday, they would have sourced their summer inventory. So there's time to appeal USTR's claims of structural surplus capacity in some sectors that have triggered the tariffs. Among Republicans, who took a midterm bruising due to rising living costs, the inflationary impact of new tariffs might force a rethink. These tariffs are only a proposal yet, they might not come to pass.

What's also true is that Trump wants a trade deal with India. He'll host the G20 summit in Miami, in under three weeks, and a deal with India before then will give him something to crow about. Assume for a moment that India signs the deal, and gets 17% tariff. What then? EU, Japan, S Korea, all of whom signed trade deals last year, are subjects of USTR's Section 301 investigations into alleged market distorting practices. So, Trump's deals don't amount to much. India has the additional sword of 100% Graham Act tariff hanging over it, for buying Russian energy. Trump could invoke it over some other imaginary infraction tomorrow. Under the circumstances, India should appeal, buy time, and brave any consequences that arise, because a deal signed under threat of tariffs isn't in its interests.

***Date: 27-11-26***

# Science Situationship

## *Even if students aren't taking up chemistry for the love of it, they should get the best from it*

**TOI Editorials**

Going by the number of students who have selected chemistry elective for CBSE's Class 12 board exams 2027, this is now our most loved subject. Compared to 10.8L students registering for chem exam, only 5.8L have for economics. Actually, chem and physics have each been chosen by more than half this exam cohort. But all this popularity is misleading. It's less a true romance than a situationship. India's education-to-jobs architecture has been making a science push for a while now. How much this stampeding towards the most employable skills speaks to improved science competencies is a separate matter.

As the CBSE exam story in TOI yesterday underlined, over the past eight years, candidate numbers in chem have grown by 70%, physics by 58%, and maths by 55%. Chemistry is at the intersection of PCM and PCB, NEET and JEE, and a good gateway to emerging interdisciplinary fields, like AI-driven drug discovery. Because science is believed to be able to open multiple professional doors, the coaching industrial complex reinforces this choice. How to assess the efficacy of all these science classes students are sitting through, is not clear. But a recent Niti Aayog document flags some data of concern. Only 34% Class 9 students nationally, for example, are able to distinguish characteristics of living organisms from non-living things. It concludes that poor competencies in abstract reasoning show a gap in how science is taught, with limited emphasis on experimentation and active discovery.

Science ed is less popular in rural schools and govt schools across India, or less available. Still, as a growing number of students choose science, India should make the best of this, by teaching it better. Chemistry, for example, shouldn't just be about memorising the periodic table and formulas, given how directly it is connected to how we live. When students become engaged with, say, how food and chemical equations really work, they grow up to be farmers who make better decisions about fertilisers, or policymakers who evaluate different interventions scientifically.

---

दैनिक भास्कर

***Date: 27-11-26***

# एआई के प्रयोग में देरी से समाज ही पिछड़ता जाएगा

**संपादकीय**

नई टेक्नोलॉजी को जितनी जल्दी अंगीकार किया जाए, उतनी तेजी से आगे बढ़ना संभव होता है सीजेआई ने कॉमनवेल्थ लीगल एजुकेशन द्वारा आयोजित एक कांफ्रेंस में कहा कि एआई के प्रयोग को रोकना न तो व्यावहारिक है, न ही संभव। केवल उसके सही प्रयोग के लिए नियम बनने होंगे, ताकि वह मानव मस्तिष्क को विस्थापित न करे। सच यही है कि आज एआई से जीवन के हर आयाम में लाभ मिल रहा है। कृषि, मैन्युफैक्चरिंग, उत्पादन, रिसर्च, मेडिकल एप्लीकेशन से लेकर असाध्य रोगों के इलाज, जेनेटिक विज्ञान और बगैर किसी खर्च के बच्चों तक सूचनाएं पहुंचाने में इस चमत्कारी तकनीकी का प्रयोग आम होने लगा है। एआई के इस्तेमाल से मानसिक ही नहीं, शारीरिक श्रम, समय और धन भी बचता है और शोध की गुणवत्ता बढ़ती है। लिहाजा नियम इस बात को लेकर बनाना होगा कि अकादमिक दुनिया में इसके प्रयोग और मात्रा की घोषणा हो और यह फर्क समझा जाए कि किसी प्रयास में मानव- मस्तिष्क का कहां और कितना इस्तेमाल हुआ है। मेडिकल रिसर्च में एआई की मदद से सीएआर-टी थेरेपी में एक क्रांतिकारी सेल विकसित किया गया है और माना जा रहा है जल्द ही कैंसर से दुनिया मुक्ति पा सकेगी। सच्चाई तो यही है कि एआई के प्रयोग में हर पल की देरी से हमारा समाज ही पिछड़ता जाएगा।

---

***Date: 27-11-26***

# दुनिया में दबदबे की होड़ अब टेक्नोलॉजी में वर्चस्व पर टिकी

**ब्रह्मा चेलानी, ( पॉलिसी फॉर सेंटर रिसर्च के प्रोफेसर एमेरिटस )**



कई वर्षों से अमेरिका एडवांस्ड टेक्नोलॉजी तक चीन की पहुंच सीमित करने के लिए कमर कसे हुए है। वह इसके लिए निर्यात-नियंत्रणों का इस्तेमाल करता है। चीन ने बार-बार इन उपायों की निंदा करते हुए इन्हें अपने तकनीकी वर्चस्व की स्थिति को मजबूत बनाए रखने की अमेरिका की खुली कोशिशें बताया है। उसका कहना है कि यह मार्केट-इकोनॉमी के सिद्धांतों के विपरीत है। हालांकि इसी दौरान चीन ने जवाबी कार्रवाई करने की अपनी क्षमता भी लगातार बढ़ाई है।

2021 में चीन ने भी 'ब्लॉकिंग रूल्स' जारी किए, जिनका उद्देश्य चीनी संस्थाओं को विदेशी कानूनों व प्रतिबंधों से बचाना था। चीन ने व्यापार युद्ध लड़ने की अपनी क्षमता भी मजबूत की और एकीकृत लाइसेंसिंग व्यवस्था बनाई। निर्यात पर व्यापक नियंत्रण की चीनी नीति अमेरिकी मॉडल पर ही आधारित है। जिस तरह अमेरिका अपने बड़े बाजार और

तकनीकी नेतृत्व का इस्तेमाल भू-राजनीतिक उद्देश्यों के लिए करता है, उसी तरह चीन भी महत्वपूर्ण खनिजों, औद्योगिक कच्चे माल और विशिष्ट पूंजीगत वस्तुओं पर अपने प्रभुत्व का लाभ उठा रहा है। लेकिन दोनों में एक महत्वपूर्ण अंतर है : वैश्विक अर्थव्यवस्था में चीन की विशिष्ट स्थिति उसे दूसरे देशों की कमजोरियों का ऐसे फायदा उठाने में सक्षम बनाती है, जैसे अमेरिका नहीं कर सकता।

रेयर-अर्थ की प्रोसेसिंग और रिफाइनिंग पर चीन का एकाधिकार तथा अन्य महत्वपूर्ण खनिजों पर उसका प्रभुत्व इसका एक उदाहरण है। इससे उसे इलेक्ट्रिक वाहनों, विंड टर्बाइनों, एडवांस्ड इलेक्ट्रॉनिक्स और डिफेंस मैन्युफैक्चरिंग समेत कई महत्वपूर्ण हाई-टेक उद्योगों पर जबरदस्त दबाव बनाने की ताकत मिलती है। औद्योगिक मशीनरी पर चीन का नियंत्रण और वैश्विक आपूर्ति शृंखलाओं में उसकी व्यापक केंद्रीय भूमिका भी उसे दबाव बनाने के अतिरिक्त अवसर देती है।

ये सभी चीन के जियो-इकोनॉमिक शस्त्रागार के बेहद ताकतवर हथियार हैं। अप्रैल 2025 में चीन ने अमेरिका को रेयर-अर्थ खनिजों के अधिकांश निर्यात रोक दिए थे। इसके चलते ट्रम्प प्रशासन को टैरिफ बढ़ाने की अपनी प्रक्रिया पलटनी पड़ी थी, ट्रेड युद्धविराम पर बातचीत करनी पड़ी थी और कुल मिलाकर टकराव का रुख छोड़कर समझौते की राह अपनानी पड़ी थी।

लेकिन चीन इन हथकंडों का इस्तेमाल केवल अमेरिका के खिलाफ ही नहीं कर रहा है। उसने भारत को भी महत्वपूर्ण खनिजों, मैन्युफैक्चरिंग उपकरणों, सुरंग खोदने वाली मशीनों, औद्योगिक कलपुर्जों, बैटरी तकनीकों और लिथियम-आयन से जुड़े कच्चे माल के निर्यात पर पाबंदियां लगाई हैं। यह भारत को एक वैकल्पिक वैश्विक मैन्युफैक्चरिंग हब के रूप में उभरने से रोकने की स्पष्ट कोशिश है।

इसी तरह, चीन ने जापान पर भी निर्यात संबंधी पाबंदियां लगाई हैं। इनमें अमूमन उन जापानी कंपनियों को निशाना बनाया गया है, जिनके संबंध रक्षा उद्योग से हैं। इसका मकसद आर्थिक दबाव बनाकर जापान की सैन्य क्षमता मजबूत करने की कोशिशों को कमजोर करना है। चीन यूरोपियन यूनियन समेत अन्य बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के खिलाफ भी इस बढ़त का इस्तेमाल कर सकता है। इससे ईवी का उत्पादन, रिन्यूएबल एनर्जी की परियोजनाएं, डिफेंस मैन्युफैक्चरिंग और बुनियादी ढांचे में बड़े निवेश प्रभावित हो सकते हैं।

लेकिन यह दांव उल्टा भी पड़ सकता है, क्योंकि इससे दुनिया भर में चीन के औद्योगिक तंत्र पर निर्भरता घटाने की होड़ और तेज होगी और सरकारें अधिक भरोसेमंद देशों की ओर रुख करने के प्रयास तेज करेंगी।

मिडिल-पावर्स और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के सामने कुल-मिलाकर इससे असहज स्थिति है। वे न केवल अमेरिका और चीन के आर्थिक दबाव के प्रति संवेदनशील हैं, बल्कि उन पर इस बात का भी जोखिम है कि दोनों महाशक्तियों के बीच होने वाली बातचीत में वे को-लैटरल डैमेज के शिकार बन जाएं। एडवांस्ड टेक्नोलॉजी पर केंद्रित अमेरिका और चीन की प्रतिस्पर्धा अब फैलकर उन कच्चे माल, मशीनरी, औद्योगिक प्रक्रियाओं और आपूर्ति

शृंखलाओं पर नियंत्रण की लड़ाई भी बनती जा रही है, जिन पर लगभग हर आधुनिक अर्थव्यवस्था निर्भर है। इस संघर्ष में बाकी दुनिया को सबसे अधिक नुकसान उठाना पड़ सकता है।

---

बिज़नेस स्टैंडर्ड

***Date: 27-11-26***

# शुल्क का नया खतरा

**संपादकीय**

अमेरिका ने भारतीय वस्तुओं पर 25 फीसदी शुल्क लगाने की बात कही है लेकिन साथ ही उसने यह भी कहा है कि अगर दोनों पक्षों में व्यापार समझौता हो जाता है तो इसे घटाकर 17 फीसदी कर दिया जाएगा। यह कदम अमेरिका के व्यापार प्रतिनिधि (यूएसटीआर) द्वारा व्यापारिक साझेदार देशों में कथित तौर पर औद्योगिक उत्पादन की अतिरिक्त क्षमता की जांच के बाद उठाया गया है। इस जांच में भारत सहित 14 अर्थव्यवस्थाओं को शामिल किया गया था। इनमें चीन, वियतनाम, बांग्लादेश और जापान भी शामिल हैं। भारत पर प्रस्तावित 25 फीसदी शुल्क मौजूदा सेक्शन 301 शुल्क को घटाकर लागू किया जाएगा जबकि कुछ वस्तुओं को इससे छूट मिलेगी। फिलहाल भारत पर 10 फीसदी शुल्क के साथ सामान्य सीमा शुल्क भी लागू है। 25 फीसदी शुल्क लागू होने से भारत प्रतिस्पर्धी देशों की तुलना में नुकसान की स्थिति में आ जाएगा क्योंकि इससे अधिक शुल्क केवल वियतनाम पर लगेगा। हालांकि यदि भारत के साथ व्यापार समझौता हो जाता है तो उसे कंबोडिया, थाईलैंड, इंडोनेशिया और मलेशिया जैसे देशों के मुकाबले शुल्क के मामले में मामूली बढ़त मिल सकती है भारतीय संदर्भ में इस कदम का मुख्य उद्देश्य अमेरिका के साथ व्यापार समझौते को आगे बढ़ाने का दबाव बनाना है।

भारत ने संरचनात्मक अतिरिक्त उत्पादन क्षमता के आरोपों को खारिज कर सही रुख अपनाया है। उसने यह भी कहा है कि व्यापार से जुड़ी किसी भी चिंता का समाधान दोनों देशों के बीच बातचीत के जरिये किए जा रहे व्यापार समझौते के दायरे में ही किया जाना चाहिए। बताया जा रहा है कि भारत सरकार फिलहाल यूएसटीआर द्वारा जारी नोटिस की जांच कर रही है और उचित समय पर अपना जवाब दे सकती है। तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद यूएसटीआर के आंकड़ों के अनुसार 2025 में अमेरिका को भारत का वस्तु निर्यात लगभग 19 फीसदी बढ़कर 100 अरब डॉलर के पार पहुंच गया। इस दौरान भारत का व्यापार अधिशेष 58.4 अरब डॉलर रहा।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि भारत और अमेरिका के संबंध केवल कारोबारी आंकड़ों तक सीमित नहीं हैं। दोनों के बीच काफी गहरे रिश्ते हैं जिन्हें बनाये रखना जरूरी है। भारत ने अमेरिकी प्रशासन के साथ लगातार बातचीत

की है। दोनों पक्षों की ओर से कई बार यह संकेत भी दिया गया कि व्यापार समझौता लगभग अंतिम चरण में है। हालांकि ऐसा लगता है कि अंतिम समझौते पर सहमति नहीं बन पाई।

अब जबकि भारत ने ब्रिटेन और यूरोपीय संघ के साथ अपेक्षाकृत व्यापक व्यापार समझौते किए हैं तो बातचीत के दौरान भारतीय बाजार खोलने में अनिच्छा को लेकर दिए जाने वाले पारंपरिक तर्क काफी कमजोर पड़ गए हैं। इसलिए यह स्पष्ट नहीं है कि व्यापार समझौते में देरी की असली वजह क्या है। बताया जा रहा है कि इसकी एक वजह अमेरिका की ओर से बार-बार बदलती मांगें हो सकती हैं जिनके कारण भारत के लिए अंतिम समझौते पर पहुंचना मुश्किल हो रहा है। इसके बावजूद भारत को अमेरिका के साथ बातचीत जारी रखनी होगी और अपने हितों से समझौता किए बिना जल्द से जल्द व्यापार समझौते को अंतिम रूप देने का प्रयास करना चाहिए।

व्यापक तौर पर देखें तो भारत ने विभिन्न देशों के साथ अन्य व्यापार समझौते करके अच्छा काम किया है। इन समझौतों से भारतीय निर्यातकों को अपने बाजारों में विविधता लाने और प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ाने में मदद मिलेगी। हालांकि ऐसा अपेक्षित तरीके से हो सके इसके लिए सरकार को अनुकूल माहौल तैयार करना होगा और खासकर छोटे कारोबारियों को गंतव्य देशों और क्षेत्रों में लागू गैर-शुल्क संबंधी आवश्यकताओं और बाधाओं से निपटने में मदद देनी होगी। इससे अमेरिका में लगने वाले शुल्क के कारण भारतीय निर्यातकों को होने वाले कुछ नुकसान की भरपाई करने में भी मदद मिलेगी, यदि अमेरिका के साथ व्यापार समझौते में देरी होती है। यद्यपि हमारा लक्ष्य इस समझौते को यथाशीघ्र अंतिम रूप देना होना चाहिए।

---

जनसत्ता

***Date: 27-11-26***

# शुल्क के सहारे

**संपादकीय**

भारत और अमेरिका के बीच व्यापार समझौते को लेकर बातचीत अभी किसी ठोस निष्कर्ष तक नहीं पहुंच सकी है। मगर इस बीच अमेरिका के रुख में जितने उतार-चढ़ाव देखे गए हैं, उससे यही लगता है कि उसकी दिलचस्पी जितनी समझौते को अंतिम शक्ल देने में है, उससे ज्यादा वह अलग-अलग बहानों से मनमानी शर्तें थोपने की कोशिश कर रहा है। अन्यथा कोई कारण नहीं है कि दोनों देशों के बीच व्यापार वार्ता में परस्पर समान हितों और सम्मान के सवाल को दरकिनार करते हुए समझौते को अंतिम रूप देने में अड़चन लगाई जाए। यह छिपा नहीं है कि जब से भारत और अमेरिका में इस संदर्भ में बातचीत की शुरुआत हुई है, तब से कभी अतिरिक्त शुल्क लगा कर, तो कभी नई शर्तों की घोषणा कर अमेरिका समझौते को अपनी सुविधा का स्वरूप देना चाहता है।

जाहिर है, यह भारत के लिए एक सहज स्वीकार्य स्थिति नहीं है। सवाल है कि क्या अमेरिका को यह ध्यान रखने की जरूरत नहीं महसूस होती कि अगर वह एक संप्रभु देश के साथ कोई समझौता करना चाहता है, तो उसे उसके समान हितों का भी खयाल रखना होगा।

गौरतलब है कि अमेरिकी व्यापार प्रतिनिधि कार्यालय ( यूएसटीआर) ने भारत से आयातित वस्तुओं पर पच्चीस फीसद शुल्क लगाने का प्रस्ताव किया है। अमेरिका की इस घोषणा के दायरे में चीन, वियतनाम, जापान, बांग्लादेश, स्विट्जरलैंड और सिंगापुर और यूरोपीय संघ के सत्ताईस देशों के समूह भी हैं, जिन पर इसी तरह शुल्क लगाने की बात कही गई है। यूएसटीआर ने आरोप लगाया है कि भारत में औद्योगिक क्षमता जरूरत से ज्यादा बढ़ने से अमेरिकी कंपनियों को नुकसान पहुंच सकता है। हालांकि भारत ने इस दावे को खारिज करते हुए कहा है कि हमारे किसी भी क्षेत्र में संरचनात्मक अतिरिक्त उत्पादन की क्षमता नहीं है। भारत की औद्योगिक विनिर्माण गतिविधियां घरेलू मांग और निर्यात जरूरतों के हिसाब से चल रही हैं। इसके अलावा, किसी भी क्षेत्र में जरूरत से ज्यादा उत्पादन नहीं किया जा रहा है। यह विचित्र है कि अमेरिका एक ओर व्यापार समझौते को अंतिम रूप देने को लेकर अक्सर प्रतिबद्धता जताता रहता है, वहीं हर थोड़े दिनों में वह कोई ऐसी शर्त सामने रख देता है, जिसे ज्यों का त्यों मान लेना भारत के लिए संभव नहीं है। या फिर अमेरिका इस तरह के नुक्ते निकालने की कोशिश करता है, जिसका कोई आधार नहीं होता।

सही है कि भारत के साथ व्यापार समझौता अंतिम रूप से हो जाने के बाद अमेरिका ने पच्चीस फीसद शुल्क को घटा कर सत्रह फीसद किए जाने का भी प्रस्ताव दिया है। लेकिन इस क्रम में हर शर्त अगर अमेरिका ही तय करेगा और उसी पर भारत से सहमत होने की उम्मीद करेगा, तो इस एकतरफा समझौते का हासिल भारत के लिहाज से क्या साबित होगा। विडंबना यह है कि पिछले कुछ वर्षों से अमेरिका ने दुनिया के अलग-अलग देशों पर मनमाने तरीके से शुल्क लगाने को अपने पक्ष में एक हथियार बना लिया है। यह एक तरह से दबाव की कूटनीति है, जिसमें वह व्यापार समझौते की शर्तों को अपने हित में मनमर्जी तरीके से निर्धारित करना चाहता है। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि किसी भी समझौते में शामिल दो संप्रभु देशों या पक्षों के बीच अगर परस्पर और समान हित की शर्तों पर सहमति नहीं बनती तो उसकी उम्र ज्यादा नहीं होगी। इसलिए अमेरिका को जितनी अपनी सुविधा और फायदे की चिंता है, उतनी ही फिक्र उसे भारत की भी करनी चाहिए।

---

Live हिन्दुस्तान .com

***Date: 27-11-26***

# पोषण की चिंता

**संपादकीय**

सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण अर्थात एफएसएसएआई को जो उपयोगी निर्देश दिए हैं, उनका स्वागत होना चाहिए। किसी भी खाद्य पदार्थ के पैकेट पर कंपनियों को स्पष्ट रूप से तय पैमाने के अनुरूप पोषण लेबल प्रकाशित करना होगा। किसी भी खाद्य पदार्थ में चीनी, वसा या नमक की मात्रा को सेहत के अनुरूप सुनिश्चित करने के लिए यह निर्देश बहुत जरूरी हो गया था। भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण को यह कार्य चरणबद्ध ढंग से करना होगा और उससे पहले करीब चार महीने के समय में पोषण संबंधी नियमों को अंतिम रूप देना होगा। पोषण संबंधी कुछ जानकारियां अभी भी हर खाद्य पदार्थ के पैकेट पर होती हैं, लेकिन विशेष रूप से शरीर के लिए नुकसानदायक तत्वों को ज्यादा स्पष्टता से प्रदर्शित करना अब अनिवार्य हो जाएगा। न्यायालय का यह निर्देश अनेक खाद्य निर्माता कंपनियों को पसंद नहीं आएगा, ये कंपनियां लंबे समय से इस प्रयास में लगी हैं कि उन्हें गुणवत्ता संबंधी मानकों में रियायत दी जाए। न्यायालय में इस बार भी रियायत लेने की पूरी कोशिश हुई, पर अंतत: सेहत संबंधी चिंताओं की जीत हुई है।

देश में जिस हिसाब से बीमारियां बढ़ रही हैं, भोजन में अत्यधिक चीनी, वसा या नमक की मात्रा को काबू में रखना जरूरी है। यह शिकायत कई बार सामने आती है कि मीठे खाद्य पदार्थों में जरूरत से ज्यादा चीनी का मिश्रण किया जाता है, तो नमकीन खाद्य पदार्थों में जरूरत से ज्यादा नमक होता है। जाहिर है, स्वाद को चटक या तेज बनाने के लिए ऐसा किया जाता है, लेकिन अब इस पुरानी परिपाटी का अंत होना चाहिए। न्यायालय ने खाद्य सुरक्षा नियामक को प्रस्तावित पोषक तत्वों की सीमा की समीक्षा करने के भी आदेश दिए हैं। न्यायालय का निर्देश है कि कोई भी खाद्य पदार्थ स्वास्थ्य संबंधी जांच से बचना नहीं चाहिए। ध्यान रहे, न्यायमूर्ति जेबी परदीवाला और के विनोद चंद्रन की पीठ ने खाद्य नियामक को मसौदा नियमों को अंतिम रूप देने के लिए चार महीने का वक्त देते हुए कहा है कि चेतावनी लेबल लगाने में देरी से जन स्वास्थ्य, विशेषकर बच्चों को नुकसान होगा, क्योंकि अभी ज्यादातर खाद्य पदार्थ उपभोक्ताओं को पोषण संबंधी जानकारी दिए बिना बेचे जा रहे हैं। खास यह भी है कि न्यायालय का यह फैसला संविधान दिवस के अवसर पर आया है और हमारा संविधान स्वास्थ्य के अधिकार को मान्यता देता है। यह अधिकार सुनिश्चित होना चाहिए, ताकि देश के लोग और भावी पीढ़ियों को स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का सामना न करना पड़े। निस्संदेह, यह मामला स्वास्थ्य, भोजन और सूचना के अधिकार से जुड़ा है।

न्यायालय ने बहुत हद तक अपना काम कर दिया है और अब सरकारों को फर्ज निभाना चाहिए। खाद्य सुरक्षा एवं मानक (लेबलिंग एवं प्रदर्शन) विनियम, 2020 पहले से मौजूद है, पर इसे अक्षरश: लागू करने की जरूरत है। साथ ही, न्यायालय ने पोषण संबंधी जागरूकता बढ़ाने के भी निर्देश दिए हैं। सरकार को यह सुनिश्चित करने के निर्देश दिए हैं कि विद्यालय के पाठ्यक्रम में आवश्यक परिवर्तन और संशोधन किए जाएं। यह देश के भविष्य के लिए बहुत सकारात्मक बात होगी कि शिक्षित करने की प्रक्रिया में ही बच्चों को पोषण के प्रति सचेत कर दिया जाएगा। ये निर्देश कतई कागजों में कैद नहीं होने चाहिए। अत: न्यायालय की भूमिका अभी खत्म नहीं हुई है, नजर रखने की जरूरत है कि सरकारें इन निर्देशों के अनुरूप काम कर रही हैं या नहीं।

***Date: 27-11-26***

# इंसाफ के लिए लंबा न हो इंतजार

**एस एन ढींगरा, ( पूर्व न्यायाधीश, दिल्ली हाईकोर्ट )**

किसी राष्ट्र की पहचान इस बात से नहीं होनी चाहिए कि वह अपने प्रभावशाली लोगों के साथ कैसा व्यवहार करता है, बल्कि इससे होनी चाहिए कि वह निचले तबके के नागरिकों के साथ कैसा सुलूक करता है? यहां नेल्सन मंडेला की याद आती है, जिन्होंने कहा था कि हमारे सिस्टम को मानवीय होना चाहिए, मगर उस तंत्र को क्या कहें, जो महज इसलिए अपने लाखों नागरिकों को सलाखों के पीछे रखे हुए है, क्योंकि उनके मुकदमे अंतिम नतीजे तक नहीं पहुंच पा रहे!

भारत में न्यायिक व्यवस्था अपने पुराने ढर्रे से बाहर नहीं निकल पा रही है। सभी को न्याय मिल सके, इसका तरीका अब तक खोजा नहीं जा सका है। इस वक्त भारतीय अदालतों में 5.5 करोड़ से अधिक मुकदमे लंबित हैं, जिनमें से 4.14 करोड़ से ज्यादा मामले तो आपराधिक हैं। इन आपराधिक मामलों के लंबित रहने के कारण जेलों में लगभग 3.9 लाख ऐसे लोग हैं, जिनके खिलाफ मुकदमा अंजाम तक नहीं पहुंच सका है। यह जेल के अंदर मौजूद कुल कैदियों का लगभग 74 फीसदी हिस्सा है। गौरतलब है कि साल 2025 में जेलों में कैदियों की कुल संख्या 5,11,542 पाई गई थी, जो हमारी जेलों की कुल क्षमता (लगभग चार लाख कैदी) से काफी अधिक है।

आंकड़े यह भी बताते हैं कि तकरीबन 90 फीसदी आपराधिक मामलों के आरोपी जमानत पा जाते हैं। जिन 10 प्रतिशत मामलों में जमानत नहीं मिल पाती, तो वे निश्चय ही गंभीर किस्म के होंगे। इसलिए यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि देश में जमानत के नियम कठोर हैं और लोगों को आसानी से जमानत नहीं मिलती। फिर इतने अधिक विचाराधीन कैदी क्यों हैं? इसकी वजह है, लंबे समय तक सुनवाई होना और कई मामलों में सुनवाई पूरी होने के बाद भी फैसले न देना। इसको सिलसिलेवार ढंग से समझना आवश्यक है।

दरअसल, भारत में विशेष आपराधिक न्यायालय नहीं हैं। कई राज्यों में तो एक ही जज दीवानी मुकदमे भी सुनता है, आपराधिक भी और अन्य तरह के वाद भी। वह कभी सिविल जज होता है, तो कभी मजिस्ट्रेट। फिर, निचली अदालतों में जजों को अपनी रिपोर्ट सुधारने के लिए निश्चित संख्या में मुकदमों के फैसले देने होते हैं। जैसे- दिल्ली में 80 मुकदमों का निपटारा आवश्यक माना गया है। यह संख्या पूरी होने के बाद जज अगले महीने की तैयारी में जुट जाते हैं और इस तरह चालू माह के मामले टलते जाते हैं।

अपने सेवाकाल में मैंने देखा है कि निचली अदालतों में यह संख्या पूरी होने के बाद काम-काज में ढिलाई बरतना और बेवजह के कामों में वक्त जाया करना आम परंपरा सी बन चुकी है। लंच के बाद दो बजे से कोर्ट के बैठने

का नियम है, मगर आमतौर पर ढाई बजे तक यह शुरू नहीं हो पाता। कई अदालतें तो खाली हो जाती हैं। कुछ ही जज लंच के बाद काम करते दिखते हैं। उच्च न्यायालय भी इस समस्या से जूझ रहे हैं।

इसके लिए विधायिका भी कम कुसूरवार नहीं है। जब से संविधान लागू हुआ और अदालतें बनीं, उसने इस दिशा में जरूरी सुधार नहीं किया। हमें अब दीवानी और फौजदारी, दोनों अदालतें अलग-अलग करनी चाहिए। इससे जजों में विशेषज्ञता बढ़ेगी। नए जजों को सिविल या फौजदारी क्षेत्र चुनने का विकल्प मिलना चाहिए। ऐसा करने से अपने क्षेत्र में दक्ष जज वकीलों की जिरह की नब्ज पकड़ सकेंगे।

एक सच यह है कि आज भी हमारी अदालतों पर वकीलों का प्रभाव है। सुनवाई की तारीख कमोबेश उन्हीं की वजहों से टलती जाती है। पक्षकार यदि प्रभावी हो, तब भी मुकदमों की सुनवाई टल जाती है। अदालतों को अपना महत्व समझना होगा। वकीलों या पक्षकारों के प्रभाव में आकर तारीख आगे करने के बजाय उनको सख्ती दिखानी चाहिए और मुकदमों को सुनना चाहिए। इसके लिए उनको किसी आदेश की दरकार नहीं है। कानून यही कहता है कि किसी मुकदमे को अपने पूरे जीवन के दौरान तीन तारीखें मिलनी चाहिए, दोनों पक्षों को मिलाकर कुल छह तारीखें, किंतु व्यावहार में ऐसा शायद ही हो पाता है। उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में तो बेलगाम तारीखें मिलती रहती हैं। लिहाजा, तारीखों को लेकर न्यायपालिका को खास पहल करनी चाहिए।

मुकदमों का कुप्रबंधन भी एक बड़ी समस्या है। किसी एक दिन में 50 से 100 मुकदमे शायद ही कोई जज सुन सकता है, लेकिन इतने मुकदमे लगाए जाते हैं। इसलिए कुछ अनुशासन जजों पर भी होना चाहिए और तारीख लगने के बाद उन्हें उस दिन मामले को सुनना ही चाहिए। चाहे इसके लिए देर शाम तक उन्हें क्यों न रुकना पड़े। हाल ही में दिल्ली में एक मामले में जज ने सुनवाई पूरी करने के छह महीने बाद फैसला सुनाया, जिस पर सुप्रीम कोर्ट ने उनसे जवाब मांगा, लेकिन विडंबना देखिए, पिछले महीने ही एक खबर में यह बात सामने आई कि जुलाई में बहस पूरी हो जाने के बाद शीर्ष अदालत ने नवंबर में आदेश दिया, जबकि कानून कहता है कि सुनवाई पूरी होने के 30 दिनों के भीतर ही फैसला सुनाया जाना चाहिए।

हड़तालों से भी मुकदमों की सुनवाई प्रभावित होती है। माना जाता है कि 'ट्रायल कोर्ट' का लगभग 50 प्रतिशत समय हड़ताल में बर्बाद हो जाता है, जबकि ये हड़तालें मामूली बातों पर की जाती हैं। यह स्थिति तब है, जब सुप्रीम कोर्ट इसे गैर-कानूनी बता चुका है।

साफ है, न्याय-तंत्र में सुधार की समग्र पहल होनी चाहिए। वकीलों के बिना भी जजों को अपना काम करना चाहिए। उन्हें न्याय तक पहुंचने के लिए अगर गवाहों से खुद सवाल पूछने पड़े या जिरह करनी पड़े, तो बेझिझक ऐसा करना चाहिए। फैसला सुनाने के बजाय न्याय करने पर उनका ज्यादा जोर होना चाहिए। सुनवाई के बाद भी किस तरह लेट-लतीफी की जाती है, इसका एक उदाहरण वह मुख्य न्यायाधीश भी हैं, जो पहले दिल्ली हाईकोर्ट में जज थे। जब बतौर मुख्य न्यायाधीश उनका तबादला हुआ, तो उनका पूरा चैंबर फाइलों से भरा था, जिनमें

ऐसी-ऐसी फाइलें थीं, जिनकी सुनवाई एक साल पहले पूरी हो चुकी थी। जजों के तबादले पर फिर से मामले की सुनवाई होती है।

भ्रष्टाचार भी एक बड़ा मसला है, जो विचाराधीन कैदियों की संख्या बढ़ा रहा है। केस लगाने से लेकर उनकी सुनवाई तक यह न्याय-तंत्र में घुन तरह लगा हुआ है। इसके लिए अनुशासनात्मक कार्रवाइयों की सख्त दरकार है। कुल मिलाकर, यह न्यायिक व्यवस्था में आमूल-चूल बदलाव का वक्त है।